ISSN 2278-8808
An International Peer Reviewed
SJIF 2013 = 4.194
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

नीति के श्लोकों की उपयोगिता

डॉ. सीमा रानी शर्मा,
हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

कथा-साहित्य का विश्व-साहित्य में अत्यन्त आदरणीय स्थान रहा है और भारतीय कथा-साहित्य को विश्व-कथा-साहित्य का जनक कहा जाता है। इसकी रोचकता, सरलता, मधुरता और भावाभिव्यक्ति की क्षमता ने विश्व के सभी विद्वानों से प्रशंसा प्राप्त की है।[1] इस साहित्य में भारतीय जीवन, विचार-धारा, कार्य-कलाप और नैतिकता की झाँकी मिलती है। यहाँ किसी व्यक्ति-विशेष का नाम न रखकर पशु, पक्षी या अन्य जीवों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसीलिए आबालवृद्ध सभी को इसकी मनोहरता आकृष्ट करती है। शेर, बिल्ली, चूहा, गीदड़, कौआ, कछुआ आदि पात्र मनोरंजन के साथ आचार-शिक्षा और कर्तव्य का उपदेश देते हैं। इस साहित्य में कहीं कुतूहल और विनोद है, कहीं हास और उल्लास; कहीं छल-प्रपंच है, तो कहीं प्रेम और विश्वासघात; कहीं धर्म है तो कहीं नीति; कहीं सदाचार है तो कहीं व्यवहार-कुशलता; कहीं भाव-सौष्ठव है तो कहीं काव्य-सौन्दर्य। इसी वैविध्य के कारण सभी रुचि वाले व्यक्तियों के लिए यह साहित्य आकर्षक और मनोरंजक सिद्ध हुआ है।

इस कथा-साहित्य को विद्वानों ने चार भागों में बाँटा है - अद्‌भुत कथा, लोककथा, कल्पित कथा और पशु-कथा। व्यावहारिक दृष्टिकोण से संस्कृत-कथा-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - (१) नीतिकथा अर्थात् उपदेशात्मक पशु-कथा और (२) लोक-कथा। लोककथा में ही अद्‌भुत-कथा और कल्पित-कथा का भी समावेश हो जाता है। इनमें नीतिकथाओं का महत्त्व इसलिए विशेष है कि वे कथा के माध्यम से नीति के श्लोकों को जन-जन के हृदय तक पहुँचाती हैं।

नीति का श्लोक अपने लघु कलेवर में अनुभव का सागर समेटे रहता है। भारतीय मनीषा ने विद्या और विनय को जीवन-सुख का आधार मानते हुए कहा है -

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् । पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥ - हितोपदेश, प्रस्तावना [6]

अर्थात् विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन मिलता है, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार के सूत्रबद्ध उपदेशों की उपयोगिता इस शोध-पत्र का केन्द्रीय विषय है।

'नीति' शब्द 'णीञ् प्रापणे' (नी - ले जाना) धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है - वह जो मनुष्य को सन्मार्ग पर ले चले (नीयते अनया इति नीतिः)। व्यापक अर्थ में नीति के अन्तर्गत सदाचार, लोक-व्यवहार, राजनीति, अर्थनीति और धर्म-सम्मत आचरण - सभी का समावेश होता है। इसीलिए नीतिशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतः अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र से माना गया है और धर्मशास्त्र से भी उसका निकट सम्बन्ध है।[1]

नीति की शिक्षा के लिए संस्कृत-साहित्य में दो प्रमुख मार्ग अपनाए गए - एक, कथा के रूप में, जिसका प्रतिनिधि ग्रन्थ पंचतन्त्र और हितोपदेश है; दूसरा, मुक्तक श्लोकों के रूप में, जिसके उदाहरण भर्तृहरि का नीतिशतक, चाणक्यनीति और सुभाषित-संग्रह हैं। हितोपदेश के प्रस्तावना-भाग में स्पष्ट कहा गया है कि कथा के बहाने बालकों को नीति का उपदेश दिया जा रहा है -

कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते । - हितोपदेश, प्रस्तावना

हितोपदेशकार ने नीतिशास्त्र के अध्ययन का फल भी बताया है -

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च । न स पराभवं याति शक्रादपि कदाचन ॥ - हितोपदेश, प्रस्तावना

अर्थात् जो इस नीतिशास्त्र को नित्य पढ़ता और सुनता है, वह इन्द्र से भी पराजित नहीं होता। पंचतन्त्र की परम्परा के अनुसार विष्णुशर्मा ने राजा अमरशक्ति के मूर्ख पुत्रों को छह मास में नीति-निपुण बनाने की प्रतिज्ञा की थी और कथाओं के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न किया।[5] यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि नीति-श्लोक और नीति-कथा परस्पर पूरक हैं।

नीति-कथा का उद्गम वैदिक साहित्य से ही हुआ है। ऋग्वेद में कई ऐसे सूक्त हैं जिनसे कथा-साहित्य का मुख्य तत्त्व - संवाद - प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इतर जीवों को मानव का प्रतिनिधि बनाया गया है और उनसे वैयक्तिक भावों का आरोप किया गया है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के १०३वें सूक्त में वर्षाकालीन मेढकों की तुलना वेदपाठ करने वाले ब्राह्मणों से की गई है। उन्हें वर्ष भर तपस्या करने वाले व्रती ब्राह्मण कहा गया है -

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः । वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ - ऋग्वेद ७.१०३.१ [2]

ऋग्वेद के दशम मण्डल (१०.१०८) में देवशुनी सरमा और पणियों का संवाद प्रस्तुत किया गया है। इसमें सरमा (कुतिया) पणियों (कृपणों) को उपदेश देती है कि वे धन-दान करें; पणि सरमा को मित्र और बहिन कहकर पुकारते हैं -

आ च गच्छान्मित्रमेना दधाम । - ऋग्वेद १०.१०८.३

इससे जीव-जन्तुओं के प्रति आत्मीयता का बीज प्रकट होता है। यही कथा-साहित्य का बीज है। यास्क ने निरुक्त में 'इत्यैतिहासकाः' कहकर इन्द्र-वृत्र-युद्ध आदि को कथा का रूप माना है। बृहद्देवता में और कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी की षड्गुरुशिष्य-कृत दीपिका टीका में इन कथाओं का विस्तृत रूप प्राप्त होता है। पन्द्रहवीं शताब्दी ई० के द्या द्विवेद ने नीतिमंजरी में वैदिक आख्यानों को नीतिकथा के रूप में प्रस्तुत किया है; इसमें उपदेशात्मक अंश पंचतन्त्र आदि के तुल्य पद्य में है, जबकि कथा वैदिक है, जो गद्य में दी गई है।[1]

ऋग्वेद की एक प्रसिद्ध ऋचा में प्रकृति को वृक्ष और जीवात्मा तथा परमात्मा को उस वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षी बताया गया है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । - ऋग्वेद १.१६४.२० [2]

यह रूपक आगे चलकर उपनिषदों और नीति-साहित्य में प्रतीकात्मक कथन की सुदृढ़ परम्परा का आधार बना।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में ये कथाएँ अपने विकसित रूप में प्राप्त होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (७.१३) में कथा के साथ उपदेशात्मक पद्यों का भी समावेश मिलता है। उपनिषदों में जीव-जन्तु-कथा और भी विकसित रूप में है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक व्यंग्य कथा में भोजन के लिए कुत्ते अपना एक नेता चुनते हैं। उसी में दो हंसों के वार्तालाप से सत्यकाम जाबाल का ध्यान आकृष्ट होता है। छान्दोग्य में ही जबाला के पुत्र सत्यकाम को हंस और मद्गु (एक जलचर पक्षी) ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं।[3] इस प्रकार पशु-पक्षियों के मुख से गम्भीर उपदेश दिलाने की जो शैली आगे पंचतन्त्र और हितोपदेश में पूर्ण विकसित हुई, उसका स्पष्ट पूर्वरूप उपनिषदों में दिखाई देता है।

महाभारत में पशु-कथाएँ और भी विकसित रूप में मिलती हैं। शान्तिपर्व तथा अन्य पर्वों में पंचतन्त्र की कथाओं के लिए उपयोगी पूरी सामग्री उपलब्ध है। इसमें सोने के अंडे देने वाली चिड़िया की कथा है; धार्मिक बिल्ली की कथा है, जो चूहों को विश्वास दिलाकर अपने वश में कर लेती है; एक चतुर पात्र की भी कथा है, जो अपने साथियों को धोखा देकर लूट का माल अपने अधिकार में कर लेता है। आदिपर्व में कुत्ते की कथा और गज-कच्छप कथा मिलती है, वनपर्व में भी ऐसी कथाएँ हैं तथा शान्तिपर्व में बारह नीतिकथाएँ हैं। रामायण में भी नीति-

कथाओं का उल्लेख मिलता है। महाभारत का उद्योगपर्व तो नीति-श्लोकों का अक्षय भण्डार ही है, जिसका विवेचन आगे किया जाएगा।

तृतीय शताब्दी ई० पू० के भरहुत स्तूप पर कथाओं के नाम खुदे हुए हैं। पतंजलि (१५० ई० पू०) ने कथा-सूचक अजाकृपाणीय, काकतालीय आदि तथा जन्मसिद्ध शत्रुता के उदाहरण-रूप अहिनकुलम्, काकोलूकीयम् जैसी नीति-कथाओं का उल्लेख किया है।[16] जातक-कथाएँ ३८० ई० पू० के लगभग विद्यमान थीं। इनमें बुद्ध के उपदेश गाथाओं के रूप में हैं और उनके स्पष्टीकरण के लिए कथाएँ कही गई हैं। बोधिसत्त्व के वानर, मृग आदि जन्मों की कथाएँ भी हैं, जिनका पंचतन्त्र की कथाओं से अत्यन्त साम्य है। आर्यसूर की जातकमाला संस्कृत में है। इसमें जातकों का संग्रह है और ये नीति-कथा के रूप में हैं।[14] बौद्ध जातक-ग्रन्थों के आधार पर जैनों ने भी जातक-ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें जैन तीर्थंकरों के पूर्वजन्मों का वर्णन है। कुछ जैन-जातकों पर पंचतन्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। एक चीनी विश्वकोश (६६८ ई०) में २०० बौद्ध-ग्रन्थों से संगृहीत कतिपय कथाओं का अनुवाद मिलता है। हरिषेण के बृहत्कथाकोश (९३२ ई०) में एक-एक जैन-सिद्धान्त के लिए अनेक कथाएँ मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि ईसवीय सन् के पूर्व भारत में नीति-कथाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं से लेकर बौद्ध-जैन कथा-ग्रन्थों तक नीति की जो धारा प्रवाहित हुई, वही आगे चलकर पंचतन्त्र, हितोपदेश, नीतिशतक और अनेक सुभाषित-संग्रहों के रूप में सुव्यवस्थित हुई।[12]

नीति-कथाओं और नीति-श्लोकों की उपयोगिता को समझने के लिए उनकी विशेषताओं को जान लेना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य के समीक्षात्मक इतिहास में इनकी पन्द्रह विशेषताएँ गिनाई गई हैं, जिन्हें यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।[1] ये नीतिकथाएँ बालोपयोगी हैं और 'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते' (हितोपदेश, प्रस्तावना) के अनुसार इनमें कथा-रूप में नीति के रहस्यों को समझाया गया है। इनमें मानव-पात्र न होकर जीव-जन्तु या पशु-पक्षी पात्र हैं। ये मुख्यतया नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र से सम्बद्ध हैं तथा इनमें जीवन का व्यावहारिक पक्ष - दैनिक जीवन, दैनिक व्यवहार, व्यक्ति और समाज का सम्पर्क और कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश - वर्णित है, इसलिए धर्मशास्त्र से भी इनका सम्बन्ध है। इनमें नीति और धर्म की शिक्षा दी गई है।

इन कथाओं में जीवन के भले और बुरे दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है। एक ओर जीवन की पवित्रता, कर्तव्यपालन, मित्र की रक्षा और वचन-पालन जैसे गुणों का चित्रण है, तो दूसरी ओर छल-प्रपंच, दम्भ और अन्तःपुर के कपट-व्यवहार जैसे दोषों का भी वर्णन है। इनमें

जीवन का लक्ष्य आदर्शवादिता न बताकर लोक-व्यवहार और नीतिनिपुणता बताया गया है। पशु-पक्षी आदि पात्र मनुष्यों के तुल्य मित्रता, विवाद, लोभ, छल, विश्वासघात, सन्धि और विग्रह करते हैं; उनके राजा, मन्त्री और दूत भी हैं, वे अवसर के अनुकूल सभी कार्य करते हैं और मानवीय गुणों तथा स्वभाव से युक्त हैं। इनमें उपदेश या नीति का अंश प्रमुखता से पद्यों में और कथा गद्य में दी गई है; एक भाव वाले विभिन्न श्लोक अनेक नीतिग्रन्थों से संगृहीत करके वक्तव्य की पुष्टि के लिए दिए गए हैं और स्थान-स्थान पर प्रसंगानुसार सुभाषित भी उद्धृत हैं। इनका प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यवहारज्ञान है।

इन कथाओं में जीवन की सफलता के लिए आवश्यक सभी गुणों का वर्णन है और जिन बातों को न जानने से मनुष्य असफल होता है, उनकी चेतावनी भी कथाओं द्वारा दी गई है। ये नीति-कथाएँ पशु-पक्षियों आदि से सम्बद्ध होने के कारण मानवमात्र के लिए रोचक और उपादेय हैं। एक मुख्य कथा के अन्तर्गत अनेक उपकथाओं का समावेश होता है। इनकी शैली सरल और सुबोध है, पाण्डित्य-प्रदर्शन का इनमें सर्वथा अभाव है तथा कथा में प्रवाह और रोचकता है। अन्ततः इनमें कथा, नीति, सदाचार, व्यवहारज्ञान, धर्म, दर्शन, उपदेश और काव्य-सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

इन विशेषताओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय यह है कि नीति-साहित्य व्यक्ति के गुण-दोष का मूल्यांकन उसके जन्म से नहीं, आचरण से करता है। एक सुभाषित में कोयल और कौए के उदाहरण से यही बात कही गई है -

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः । वसन्तसमये प्रापते काकः काकः पिकः पिकः ॥ - सुभाषित [13]

अर्थात् कौआ भी काला है और कोयल भी काली, दोनों में भेद कौन करे? वसन्त आने पर ही पता चलता है कि कौआ कौआ है और कोयल कोयल। इसी प्रकार बुद्धि और विवेक का महत्त्व बताते हुए पंचतन्त्र की सिंह-शशक कथा में कहा गया है -

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् । वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥ - पंचतन्त्र, मित्रभेद

अर्थात् जिसके पास बुद्धि है, उसी के पास बल है; निर्बुद्धि के पास बल कहाँ? मदोन्मत्त सिंह को एक खरगोश ने वन में मार गिराया।

महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत प्रजागर-पर्व (अध्याय ३३–४०) में महात्मा विदुर ने चिन्ताग्रस्त धृतराष्ट्र को जो उपदेश दिए, वे 'विदुरनीति' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[4] इनमें राजधर्म, पण्डित और मूर्ख के लक्षण, मित्र-शत्रु-विवेक और आत्मसंयम का सुन्दर निरूपण है। धर्म, विद्या, रूप और कुल की रक्षा के उपाय बताते हुए विदुर कहते हैं -

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते । मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ - महाभारत, उद्योगपर्व (विदुरनीति)

अर्थात् धर्म की रक्षा सत्य से, विद्या की रक्षा अभ्यास से, रूप की रक्षा स्वच्छता से और कुल की रक्षा सदाचरण से होती है। इसी नीति में व्यक्ति, परिवार, ग्राम और राष्ट्र के पारस्परिक सम्बन्ध का यह सूत्र भी मिलता है -

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ - महाभारत, उद्योगपर्व (विदुरनीति)

इसका भाव यह है कि बड़े हित के लिए छोटे हित का त्याग उचित है - कुल के लिए व्यक्ति का, ग्राम के लिए कुल का और जनपद के लिए ग्राम का। यह श्लोक सामाजिक उत्तरदायित्व और लोकहित की उस भावना को प्रकट करता है, जो आज भी नागरिक-कर्तव्य का आधार है।

चाणक्य (कौटिल्य) के नाम से प्रचलित 'चाणक्यनीति' में जीवन-व्यवहार के सूत्र अत्यन्त संक्षिप्त श्लोकों में निबद्ध हैं।[8] इसमें समय, स्थान, मित्र, आय-व्यय और अपनी सामर्थ्य का बार-बार विचार करने का परामर्श दिया गया है -

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ । कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ - चाणक्यनीति, अध्याय १६

अर्थात् यह कौन-सा समय है, मित्र कौन हैं, यह कौन-सा स्थान है, आय और व्यय क्या हैं, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति कितनी है - इसका बार-बार चिन्तन करना चाहिए। विद्वान् की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में चाणक्य का मत है -

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन । स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ - चाणक्यनीति

अर्थात् विद्वत्ता और राजापन कभी बराबर नहीं हो सकते; राजा अपने देश में पूजा जाता है, पर विद्वान् सर्वत्र सम्मान पाता है।

भर्तृहरि के तीन शतकों - नीति, शृंगार और वैराग्य - में 'नीतिशतक' सुभाषित-साहित्य का शिखर है।[7] इसमें विद्या, मूर्खता, सज्जन-दुर्जन, धैर्य, उद्यम और भाग्य जैसे विषयों पर कवित्वपूर्ण श्लोक हैं। विद्या की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है -

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः । विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ - नीतिशतक, २०

अर्थात् विद्या मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है, गुप्त धन है, भोग, यश और सुख देने वाली है, गुरुओं की भी गुरु है; विदेश में बन्धु के समान और परम देवता है; राजाओं में विद्या का सम्मान होता है, धन का नहीं। विद्या-विहीन मनुष्य पशु के समान है। इसी प्रकार वाणी की सुसंस्कृतता को सच्चा आभूषण बताया गया है -

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः । वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ - नीतिशतक, १९ [7]

अर्थात् बाजूबन्द, चन्द्रमा जैसे उज्ज्वल हार, स्नान, लेप, फूल और सजे हुए केश - ये पुरुष को शोभित नहीं करते; केवल संस्कारयुक्त वाणी ही उसे सच्चा अलंकार देती है। अन्य आभूषण नष्ट हो जाते हैं, पर वाणी का आभूषण सदा बना रहता है। दृढ़ संकल्प और अध्यवसाय की प्रेरणा देने वाला भर्तृहरि का यह श्लोक तो लोक-जीवन में कहावत की तरह प्रचलित है -

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः । विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ - नीतिशतक, २७

अर्थात् नीच जन विघ्न के भय से कार्य आरम्भ ही नहीं करते; मध्यम जन आरम्भ करके विघ्न आने पर रुक जाते हैं; किन्तु उत्तम जन बार-बार विघ्नों से टकराकर भी आरम्भ किए हुए कार्य को नहीं छोड़ते।

विष्णुशर्मा-रचित पंचतन्त्र के पाँच तन्त्र - मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक - नीति-कथाओं के सर्वाधिक लोकप्रिय संग्रह हैं।[5] नारायण पण्डित ने हितोपदेश की रचना पंचतन्त्र तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर की और स्वयं स्वीकार किया -

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च । पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ॥ - हितोपदेश, प्रस्तावना [6]

इनमें कथा गद्य में और नीति पद्य में है, जैसा कि पूर्व में बताया गया है। इनके श्लोकों में विश्व-बन्धुत्व की उदात्त भावना भी मिलती है-

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ - पंचतन्त्र, अपरीक्षितकारक, ५.३८

अर्थात् 'यह मेरा है, वह पराया है' - ऐसी गणना संकीर्ण चित्त वालों की होती है; उदार चरित्र वालों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है। उद्यम की महिमा बताने वाला यह श्लोक भी इन्हीं ग्रन्थों की परम्परा का है -

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः । न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ - हितोपदेश, मित्रलाभ

अर्थात् कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, केवल मनोरथ से नहीं; सोते हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नीति के श्लोक केवल साहित्यिक रचना नहीं, जीवन-निर्वाह की कला के सूत्र हैं। उनकी उपयोगिता को निम्नलिखित क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

नीति-साहित्य में धर्म एवं नीति की शिक्षा तथा जीवन-सफलता के गुणों का वर्णन - व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में सहायक है। विनम्रता और बड़ों के सम्मान को मनुस्मृति ने दीर्घायु, विद्या, यश और बल का साधन माना है -

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः । चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ - मनुस्मृति, २.१२१ [9]

वाणी की मर्यादा के लिए यह प्रसिद्ध श्लोक आज भी शिष्टाचार की कसौटी है -

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् । प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ - मनुस्मृति, ४.१३८

अर्थात् सत्य बोले, प्रिय बोले; अप्रिय सत्य न बोले और प्रिय असत्य भी न बोले - यही सनातन धर्म है। आत्मनिर्भरता और आत्म-अनुशासन के सम्बन्ध में मनु का एक और सूत्र है -

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद् विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ - मनुस्मृति, ४.१६०

अर्थात् जो कुछ दूसरे के वश में है, वह दुःख है और जो अपने वश में है, वह सुख है - सुख-दुःख का यही संक्षिप्त लक्षण है। आत्म-उन्नयन की प्रेरणा गीता के इस वचन में मिलती है -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ - श्रीमद्भगवद्गीता, ६.५ [10]

अर्थात् मनुष्य अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपने को गिरने न दे; क्योंकि आत्मा ही अपना मित्र है और आत्मा ही अपना शत्रु। आलस्य को सबसे बड़ा शत्रु बताने वाला सुभाषित विद्यार्थियों और कर्मचारियों, दोनों के लिए समान रूप से प्रेरक है -

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः । नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥ - सुभाषित

अर्थात् आलस्य मनुष्यों के शरीर में स्थित सबसे बड़ा शत्रु है और उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं, जिसे करके मनुष्य दुःखी नहीं होता।

नीति-कथाओं और श्लोकों का सबसे प्रत्यक्ष लाभ शिक्षा के क्षेत्र में है। पंचतन्त्र का निर्माण ही राजकुमारों की शिक्षा के लिए हुआ था। कथा की रोचकता बालक के मन में नैतिक मूल्यों को सहज ही बैठा देती है, क्योंकि जीव-जन्तु पात्र बालमन के निकट होते हैं और शैली सरल एवं

सुबोध है। समय के सदुपयोग की शिक्षा देने वाला यह श्लोक विद्यार्थी-जीवन का मार्गदर्शक है -

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत् । क्षणे नष्टे कुतो विद्या कणे नष्टे कुतो धनम् ॥ - सुभाषित

अर्थात् विद्या एक-एक क्षण का उपयोग करके और धन एक-एक कण बचाकर अर्जित करना चाहिए; क्षण नष्ट होने पर विद्या कहाँ और कण नष्ट होने पर धन कहाँ? इसी प्रकार हितोपदेश का यह श्लोक शास्त्र-ज्ञान को मनुष्य की आँख बताता है -

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् । सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ - हितोपदेश, प्रस्तावना

अर्थात् शास्त्र अनेक संशयों को दूर करने वाला और अप्रत्यक्ष विषयों को दिखाने वाला सबका नेत्र है; जिसके पास यह नहीं, वह अन्धा ही है।

नीति-साहित्य में व्यक्ति और समाज के सम्पर्क का वर्णन है। इन श्लोकों में परोपकार, मैत्री, सहानुभूति और पारस्परिक सहयोग को समाज की धुरी माना गया है। प्रकृति के उदाहरण से परोपकार का आदर्श यों कहा गया है -

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः । परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥ - सुभाषित [13]

अर्थात् वृक्ष परोपकार के लिए फलते हैं, नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं, गायें परोपकार के लिए दूध देती हैं; यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है। पुण्य और पाप की सबसे सरल कसौटी सुभाषितकार ने यह बताई है -

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् । परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ - सुभाषित

अर्थात् अठारह पुराणों में व्यास के केवल दो वचन हैं - परोपकार पुण्य के लिए है और दूसरों को पीड़ा देना पाप के लिए। पारस्परिक व्यवहार का स्वर्णिम नियम भी नीति-श्लोकों में सहज रूप से मिलता है -

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् । आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ - सुभाषित

अर्थात् धर्म का सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो - जो अपने लिए प्रतिकूल हो, वह दूसरों के साथ मत करो। पंचतन्त्र का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला श्लोक, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, आज के वैश्विक सन्दर्भ में सहिष्णुता और विश्व-बन्धुत्व का आधार-वाक्य बन चुका है।

नीति-कथाओं का प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यवहारज्ञान है। इनके पात्र राजा, मन्त्री और दूत हैं तथा सन्धि, विग्रह जैसे राजनयिक उपाय करते हैं। पंचतन्त्र के मित्रभेद और

काकोलूकीय तन्त्र में कूटनीति, गुप्तचरी, शत्रु-विवेक और विश्वासघात से सावधानी के अनेक पाठ मिलते हैं।[5] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शासक के कर्तव्य का आदर्श इस प्रकार प्रतिपादित है -

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् । नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ - कौटिलीय अर्थशास्त्र, १.१९.३४ [15]

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है; राजा का अपना प्रिय ही उसका हित नहीं, जो प्रजा को प्रिय हो वही उसका हित है। यह श्लोक आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा का प्राचीन रूप कहा जा सकता है। शासक और नेतृत्वकर्ता के आचरण का प्रभाव समाज पर किस प्रकार पड़ता है, यह गीता में कहा गया है -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ - श्रीमद्भगवद्गीता, ३.२१

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य लोग भी वैसा ही करते हैं; वह जो प्रमाण स्थापित करता है, लोक उसी का अनुसरण करता है। आज के प्रशासकों, जनप्रतिनिधियों और शिक्षकों के लिए यह नीति-वचन उतना ही प्रासंगिक है।

नीति-साहित्य जीवन का लक्ष्य केवल आदर्शवादिता नहीं, बल्कि लोक-व्यवहार और नीतिनिपुणता बताता है। इसी कारण इन श्लोकों में सोच-विचारकर कार्य करने पर विशेष बल है। महाकवि भारवि का यह श्लोक निर्णय-प्रक्रिया का सार प्रस्तुत करता है -

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् । वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥ - किरातार्जुनीयम्, २.३० [11]

अर्थात् बिना विचारे सहसा कोई कार्य न करे, क्योंकि अविवेक सबसे बड़ी विपत्तियों का घर है; जो विचारपूर्वक कार्य करता है, गुणों की लोभी सम्पत्तियाँ स्वयं उसका वरण करती हैं। पंचतन्त्र की अनेक कथाएँ - जैसे बिना सोचे-समझे कार्य करने वाले पात्र का पछताना - इसी श्लोक की कथात्मक व्याख्या हैं। जिन बातों को न जानने से मनुष्य जीवन में असफल होता है, उनकी चेतावनी कथाओं द्वारा दी गई है; इसलिए ये श्लोक 'क्या न करें' का भी उतना ही महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाते हैं।

नीति-साहित्य सांसारिक व्यवहार तक सीमित नहीं है; इसमें धर्म और दर्शन का समन्वय भी है। मृत्यु की अनिवार्यता का स्मरण कराते हुए हितोपदेश धर्म-पालन की प्रेरणा देता है -

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् । गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ - हितोपदेश, प्रस्तावना

अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य विद्या और धन का चिन्तन ऐसे करे मानो वह अजर-अमर हो, किन्तु धर्म का आचरण ऐसे करे मानो मृत्यु ने उसे केशों से पकड़ रखा हो। कर्म और फल के सम्बन्ध में गीता का सन्देश नीति और अध्यात्म का सेतु है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ - श्रीमद्भगवद्गीता, २.४७

अर्थात् तेरा अधिकार केवल कर्म में है, फल में कभी नहीं; तू कर्मफल का हेतु मत बन और तेरी अकर्मण्यता में आसक्ति भी न हो। ऋग्वेद का 'द्वा सुपर्णा' रूपक तथा छान्दोग्य उपनिषद् की पशु-पक्षी-कथाएँ दिखाती हैं कि नीति की अन्तिम परिणति आत्म-ज्ञान और ब्रह्मविद्या में है।[2][3]

आज का समाज तकनीक, प्रतिस्पर्धा और उपभोग-प्रधान जीवन-शैली से जूझ रहा है। ऐसे समय में नीति के श्लोक चार रूपों में उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्रथम, मूल्य-शिक्षा के रूप में - राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० ने भारतीय ज्ञान-परम्परा और नैतिक मूल्यों को शिक्षा का अंग बनाने पर बल दिया है,[17] और पंचतन्त्र-हितोपदेश की कथाएँ तथा सुभाषित इसके सहज माध्यम हैं। द्वितीय, व्यावसायिक और प्रशासनिक नैतिकता के रूप में - समय-प्रबन्धन, निर्णय-क्षमता, ईमानदारी और उत्तरदायित्व के सूत्र इन श्लोकों में सहज उपलब्ध हैं। तृतीय, संचार-कौशल के रूप में - 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' का सिद्धान्त सार्वजनिक संवाद और डिजिटल माध्यमों की भाषा-मर्यादा के लिए मार्गदर्शक है। चतुर्थ, पर्यावरण-चेतना के रूप में - 'परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः' जैसे वचन प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और संरक्षण की भावना जगाते हैं।

नीति-श्लोकों की संक्षिप्तता उन्हें स्मरणीय बनाती है। कुछ पंक्तियों में गहन जीवन-सत्य समाहित होने के कारण वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहे हैं और आज भी भाषणों, लेखों, विद्यालयों की प्रार्थना-सभाओं और दैनन्दिन वार्तालाप में उद्धृत किए जाते हैं। किसी भी प्राचीन साहित्य की भाँति नीति-श्लोकों को अपने युग-सन्दर्भ में समझना चाहिए। समीक्षात्मक इतिहास स्वयं बताता है कि इनमें जीवन के भले और बुरे दोनों पक्षों का वर्णन है, छल-प्रपंच और दम्भ का भी चित्रण है, और इनका लक्ष्य आदर्शवादिता से अधिक लोक-व्यवहार है।[1] अतः यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कथित नीति आज के संवैधानिक और मानवीय मूल्यों के अनुकूल हो। कुछ श्लोकों में वर्ण, लिंग या वर्ग-सम्बन्धी तत्कालीन सामाजिक धारणाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं, जिन्हें आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ना उचित है। इसी प्रकार कूटनीति-विषयक कुछ उपदेश परिस्थिति-विशेष के लिए हैं, सार्वकालिक नैतिक नियम के रूप में नहीं। नीति के श्लोकों का वास्तविक लाभ तभी है जब उनके शाश्वत मूल्यों

- सत्य, परोपकार, उद्यम, विनय, विवेक - को ग्रहण करते हुए युगानुरूप विवेक का प्रयोग किया जाए।

नीति-कथाओं और नीति-श्लोकों की परम्परा ऋग्वेद के सरमा-पणि संवाद और मण्डूक-सूक्त से आरम्भ होकर ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, महाभारत, जातक-साहित्य और जैन कथा-कोशों से होती हुई पंचतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्यनीति और नीतिशतक जैसे ग्रन्थों में परिपक्व हुई। ईसवीय सन् से पूर्व ही यह साहित्य पर्याप्त विकसित हो चुका था। इसकी सरल शैली, रोचकता, पशु-पक्षी पात्रों की सार्वजनीनता तथा कथा, नीति, व्यवहारज्ञान, धर्म और काव्य-सौन्दर्य का समन्वय इसे बाल, युवा और वृद्ध - सभी के लिए उपयोगी बनाता है।

व्यक्ति के चरित्र-निर्माण, शिक्षा, सामाजिक सद्भाव, शासन-व्यवस्था, निर्णय-क्षमता और आध्यात्मिक उन्नति - सभी क्षेत्रों में इन श्लोकों का योगदान स्पष्ट है। आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें विद्यालयी पाठ्यक्रम, चरित्र-निर्माण कार्यक्रमों और सार्वजनिक संवाद में उचित स्थान दिया जाए तथा विवेकपूर्ण दृष्टि से उनके शाश्वत मूल्यों को ग्रहण किया जाए। जिस प्रकार हितोपदेश ने कहा कि नीतिशास्त्र का नित्य अध्ययन करने वाला कभी पराभव को प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार आज भी नीति के श्लोक व्यक्ति और समाज - दोनों को पराभव से बचाकर सही दिशा देने की सामर्थ्य रखते हैं।

सन्दर्भ-सूची

[1] संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, 'कथा-साहित्य' अध्याय, पृ. ५७१–५७४ (इसमें मैकडॉनेल, भोलज़मान आदि का उद्धरण तथा पाणिनि-सूत्र २.१.३; २.४.६; ४.३.१०६ आदि के सन्दर्भ भी हैं)।

[2] ऋग्वेद संहिता - मण्डल १ (१.१६४.२०), मण्डल ७ (७.१०३.१), मण्डल १० (१०.१०८)।

[3] छान्दोग्य उपनिषद् - १.१२, ४.७–८।

[4] महाभारत - आदिपर्व, उद्योगपर्व (प्रजागर-पर्व/विदुरनीति), शान्तिपर्व; गीताप्रेस, गोरखपुर।

[5] विष्णुशर्मा, पंचतन्त्र (मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश, अपरीक्षितकारक)।

[6] नारायण पण्डित, हितोपदेश (प्रस्तावना, मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह, सन्धि)।

[7] भर्तृहरि, नीतिशतक (सुभाषित-त्रिशती/शतकत्रय)।

[8] चाणक्यनीति (चाणक्यनीतिदर्पण)।

[9] मनुस्मृति - अध्याय २ एवं ४।

[10] श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय २, ३ एवं ६; गीताप्रेस, गोरखपुर।

[11] भारवि, किरातार्जुनीयम् - सर्ग २।
[12] बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा मन्दिर, वाराणसी।
[13] सुभाषितरत्नभाण्डागार (सं. काशीनाथ पाण्डुरंग परब), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
[14] आर्यशूर, जातकमाला।
[15] कौटिलीय अर्थशास्त्र - अधिकरण १, अध्याय १९।
[16] ए. ए. मैकडॉनेल, इण्डियाज़ पास्ट, पृ. ११७ (समीक्षात्मक इतिहास में उद्धृत)।
[17] राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।